|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

4/5 (श्लोक 48-59), रविवार, 09 जून 2024

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/gJJ84xQO3k4

कर्मयोगी और स्थितप्रज्ञ के लक्षण

पारम्परिक प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, हनुमान चालीसा पाठ, परम पूजनीय आदरणीय गुरुदेव स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी के शुभ चरणों और गीता प्रेमी, गीता साधकों को वन्दन करके गीता जी का अभ्यास आरम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता जी की रचना देखनी है तो पहले अध्याय में जिस परिस्थिति में और अर्जुन की जिस मन:स्थिति में भगवान ने अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता सुनाई उसे समझना चाहिए, उसका वर्णन गीताजी के पहले ही अध्याय में किया गया है।

दूसरे अध्याय के आरम्भ में श्रीभगवान ने बताया कि मुख्य तत्त्व क्या है, मूल ज्ञान क्या है, आत्म तत्त्व क्या है? इसके पश्चात् श्रीभगवान ने बताया कि आत्म तत्त्व को कैसे जानना है और उसको जानने के लिए क्या-क्या प्रयास करना है? दूसरे अध्याय में भगवान ने इस योग के बारे में बताया।

ऐसा कहा जाता है कि दूसरा अध्याय अनुक्रमणिका अध्याय है। इसका अर्थ है कि गीता जी में आगे क्या-क्या बताया जाने वाला है, वे सारी बातें भगवान ने संक्षेप में इस अध्याय में बताई है। आरम्भिक श्लोकों में आत्म तत्त्व के बारे में बताया गया है। आत्म तत्त्व कैसा है। इसे कोई काट नहीं सकता, कोई जला नहीं सकता, यह अविनाशी है अव्यय है, अचिन्त्य है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। (2.25)

इस आत्म तत्त्व को जिसने जान लिया उसे सारी समस्याओं का हल प्राप्त हो जाता है। लेकिन इसको जानना सरल नहीं है। इसे जानने के लिए ज्ञानी, ऋषि, मनीषी अनेक प्रकार से प्रयास करते रहते हैं। इसे जानने के लिए जो प्रयास किया जाता है वह ही कर्म योग है। कर्म योग के आचरण से ज्ञान की प्राप्ति होने पर ज्ञान की ज्योति हमारे अन्तरङ्ग में स्वतः ही प्रज्वलित हो जाती है।

इसलिए भगवान ने यह बताने के पश्चात् इसे व्यवहारिक रूप से भी बताया कि हे अर्जुन! यदि तुम इस युद्ध को छोड़कर चले गए तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। स्वधर्म का त्याग करके तुम अपयश के भागी होंगे। तुम्हारी अकीर्ति हो जाएगी। व्यावहारिक रूप से तुम्हारा इसमें कल्याण नहीं है। यदि तुम इसे छोड़कर नहीं जाते तो

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। (2.37)

तुम्हारी यदि मृत्यु होती है तो तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है, क्योंकि तुम्हारा देहत्याग कर्त्तव्य पालन करते हुए हुआ है। यदि तुम जीत गए तो पृथ्वी का निष्कलङ्क राज्य तुम्हें प्राप्त होगा। हर स्थिति में तुम्हारी जीत होगी। मुख्य रूप से आत्म तत्त्व और व्यवहारिक रूप की बात बताने के बाद भगवान ने कहा -

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। (2.38)

ऐसा करने से तुम्हें पाप नहीं लगेगा। तुम हार-जीत, सुख-दुःख के भाव का त्याग कर युद्ध में लग जाओ। भगवान कहते हैं कि मैंने तुम्हें साङ्ख्य योग, ज्ञान की बातें बताई हैं अब मै तुम्हें योग की बुद्धि के विषय में बताता हूँ। मैं तुम्हें कर्म योग के विषय में बताता हूँ। यह देखने से मन में भाव आ सकता है कि ऐसा करने से क्या होगा।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥2.40॥

यदि तुम इसे जरा सा भी आचरण में लाओगे तो तुम्हें बड़े से बड़े भय से मुक्ति मिल जाएगी। इसमें **व्यवसायात्मिका बुद्धि** अर्थात् निश्चय होना आवश्यक है। हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। व्यवसायात्मिका या निश्चयात्मक बुद्धि होनी चाहिए। जीवन का लक्ष्य पहले निर्धारित करो और उस लक्ष्य पर बुद्धि निश्चित होनी चाहिए ताकि हम विचलित न हो सके।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (2.47)

भगवान श्रीकृष्ण ने चार चरणों में चार सन्देश, चार बातें बताई है-

अधिकार का संस्कृत में अर्थ है - योग्यता।
वह इस विषय का अधिकारी है अर्थात् वह इस कर्म को करने की योग्यता रखता है। श्रीभगवान ने कर्म करने की योग्यता सबको दी है। हम सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कर्म कर सकते हैं। हमें कर्म करने की छूट दी गई है। पर उस कर्म का फल क्या मिलेगा इसकी योग्यता हमारे पास नहीं है इसलिए फल की आसक्ति मन में न रखते हुए कर्म करने का सन्देश भगवान देते हैं।

फल और ध्येय में अन्तर होता है।

फल - स्वार्थ प्रेरित इच्छा फल है।
मैं अपने लिए क्या चाहता हूँ। यदि किसी कर्म का फल मुझे मिल गया तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है।

ध्येय - जीवन का अन्तिम स्थान, गन्तव्य प्राप्त करना मेरा ध्येय है।
ध्येय प्राप्ति के लिए कर्म करने के समय मुझे सुख-दुःख, यश-अपयश, जय-पराजय का सामना करना पड़ेगा लेकिन जब तक ध्येय की प्राप्ति नहीं होती मुझे अपना कर्त्तव्य कर्म करते रहना है।

चौथे चरण '**मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि**' में श्रीभगवान कहते हैं कि अकर्मण्य कभी नहीं बनना।
यश नहीं मिला, पराजय हो गई, लाभ नहीं मिला तो भी कर्म करना बन्द नहीं करना है। जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति होने तक कर्म करते रहना है। मेरी मातृभूमि विश्व गुरु पद पर प्राप्त होते देखने तक मुझे कर्म करते रहना है। मेरी इच्छा के अनुसार यदि मेरे कर्म का फल नहीं मिला इस बात की चिन्ता करते हुए अकर्मण्य नहीं होना।

अर्जुन को निमित्त बनाकर भगवान सबको यह बता रहे हैं कि कभी भी अकर्मण्य नहीं रहना और कर्म कैसे करना है? यह श्रीभगवान ने आगे बताया है -

2.48

योगस्थ:(ख्) कुरु कर्माणि, सङ्गं(न्) त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः(स्) समो भूत्वा, समत्वं(यँ) योग उच्यते॥2.48॥

हे धनञ्जय ! (तू) आसक्ति का त्याग करके सिद्धि-असिद्धि में सम होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर; (क्योंकि) समत्व (ही) योग कहा जाता है।

विवेचन: इस महत्वपूर्ण श्लोक में श्रीभगवान ने योग की व्याख्या की है।
श्रीभगवान कहते हैं **योगस्थ: कुरु कर्माणि**।
योगस्थ का अर्थ है योग में स्थित होना
योग का अर्थ है जुड़ना।
जो मेरा ध्येय है उसके साथ एकरूप हो जाओ। मनुष्य का सर्वोच्च गन्तव्य परमात्मा है। यदि हम परमात्मा को अन्तिम लक्ष्य नहीं मानते हैं तो जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? यह पहले जानना है।

इच्छा, कामना, ध्येय में अन्तर है।

मनुष्य को अपना ध्येय निश्चित करना है।
मेरी भारत माता को विश्वगुरु के पद पर बैठाना है, मुझे परमात्मा की प्राप्ति करनी है। परमात्मा के साथ एकरूप हो जाना किसी का भी ध्येय हो सकता है। 'सबका कल्याण हो' यह किसी का भी ध्येय हो सकता है। मेरा शहर सबसे सुन्दर बन जाए यह भी किसी का ध्येय हो सकता है।

इच्छा - इच्छा छोटी होती है, मैं तक सीमित रहती है, आत्म केन्द्रित होती है। मुझे जीवन में यह सुख मिल जाए। मैं जीवन में डॉक्टर बन जाऊँ, इंजीनियर बन जाऊँ, बड़ा अफसर बन जाऊँ यह इच्छा होती है।

ध्येय आई ए एस अधिकारी बनकर देश की सेवा करनी है या डॉक्टर बनकर रूग्णों की सेवा करनी है - यह ध्येय है।
यह मुझे किसलिए करना है। मनुष्य को पहले अपने जीवन का ध्येय निश्चित करना चाहिए। सभी मनुष्यों की सेवा करने के लिए मुझे डॉक्टर बनना है, सबको निरोगी बनाना है यह मेरा ध्येय है।

ध्येय बड़ा होना चाहिए। ध्येय समाप्त हो जाता है तो मनुष्य भटक जाता है इसलिए ध्येय सदैव बड़ा होना चाहिए। ध्येय ऐसा होना चाहिए जो अत्यन्त ऊँचा हो और अप्राप्य हो। वह प्राप्त कब होगा, होगा या नहीं, इसका भाव नहीं होना चाहिए।

कामना - जो इच्छा से थोड़ा बड़ा है।
मेरे परिवार का कल्याण हो, इसके लिए मैं कार्य करूँगा।
मेरे समाज का कल्याण हो, यह भी किसी के लिए कार्य हो सकता है।
मेरे शहर, मेरे जनपद के लिए मैं कार्य करूँगा।
मैं भारत माता के लिए जीवन भर कार्य करूँगा।
सारे विश्व के लिए कार्य करूँगा, यह किसी के जीवन का ध्येय हो सकता है।

कामना जब विशाल होती है, तो वह ध्येय बन जाती है।
कर्म करते समय बीच में कुछ व्यवधान आएँगे तो भी विचलित नहीं होना चाहिए और अपना कार्य करना है। ध्येय के साथ एक रूप होकर कार्य करना ही **योगस्थ कुरु कर्माणि** है। सबका कल्याण भी ध्येय हो सकता है।

सङ्ग - आसक्ति का अर्थ है चिपकना। मुझे क्या मिलना चाहिए, मुझे क्या प्राप्त होगा यह आसक्ति है। सबका कल्याण हो ऐसा ध्येय होना चाहिए। ध्येय की आसक्ति होती है तो छोटी-छोटी कामनाएँ स्वत: ही छूट जाती हैं। फल की आसक्ति छोड़ते ही

कामासक्ति स्वयं ही हट जाएगी।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा - कार्य कभी सिद्ध होगा कभी सिद्ध नहीं होगा, कभी लाभ होगा कभी हानि होगी, कभी सुख मिलेगा कभी दुःख मिलेगा, कभी जय कभी पराजय होगी, कभी यश मिलेगा कभी अपयश मिलेगा - इसे कहते हैं सिद्धि असिद्धि। **हमारी कामना के अनुसार काम हो गया तो सिद्धि, नहीं हुआ तो असिद्धि**।

जो भी प्राप्त हो गया उसमें सम रहकर अपने ध्येय पर केन्द्रित हो जाना है। आगे कैसे कार्य करना है उसके विषय में सोचना है। कल से अनासक्त हो जाना है। मैंने अच्छे से काम किया कर्मफल से अनासक्त होकर आगे प्रयास करना है। **सिद्धि-असिद्धि में समत्व रहना है, स्थिर रहना है - यही समान होना ही योग है**। किसी भी परिस्थिति में अपने चित्त को सम, स्थिर रखना ही योग है। अपने ध्येय के साथ अपने चित्त को समत्व में रखकर बीच में प्राप्त होने वाली सफलता-असफलता की चिन्ता छोड़कर कार्यरत रहना ही योग है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं -
ये आत्ममनो बुद्धि

यही योग का सार है, अर्थ है। मन का कार्य है भावना। मन इच्छा करता रहता है, ऐसा होना था, ऐसा नहीं होना था। हर इच्छा पूर्ण होगी या नहीं पता नहीं। बुध्दि ध्येय का निश्चय करती है, निश्चयात्मक होती है। इच्छा पूर्ण हुई तो उत्तेजित नहीं होना और यदि पूर्ण नहीं हुई तो अवसाद में नहीं जाना यही योग है।

अटल जी की कविता है -
क्या हार में, क्या जीत में, किंचित नहीं भयभीत मैं
जो हो गया सो हो गया, आगे क्या करना है इसी बात पर विचार करना है, इसी को योग कहते हैं।

2.49

दूरेण ह्यवरं(ङ्) कर्म, बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ, कृपणाः(फ्) फलहेतवः॥2.49॥

बुद्धियोग (समता) की अपेक्षा सकाम कर्म दूर से (अत्यन्त) ही निकृष्ट है। (अतः) हे धनञ्जय ! (तू) बुद्धि (समता) का आश्रय ले; क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।

विवेचन: जब मनुष्य अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए कर्म करता है तो वह अत्यन्त निम्न कोटि का होता है। वह जो कर्म करता है वह कर्म तो है पर कर्मयोग नहीं। मुझे यह प्राप्त होगा इसलिए मैं काम करूँगा या मैं यह कर्म इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे अमुक वस्तु की प्राप्ति होगी। समत्त्व की बुद्धि नहीं रखते हुए जो कर्म किया जाता है वह अत्यन्त निम्न कोटि का होता है। वह योग नहीं है।
श्रीभगवान कहते हैं इसलिए बुद्धि की शरण में जाओ। निश्चयात्मक बुद्धि की शरण में जाओ जो समत्व में रखे।

मेरा जो ध्येय है, मुझे इसके लिए कार्य करना है। मेरा ध्येय यदि परमात्मा है तो मैं जो भी कार्य कर रहा हूँ, वह परमात्मा के लिए कर रहा हूँ यह भाव जागृत रखना है। मुझे जो भी दायित्व दिया गया है वह कार्य भगवान ने मुझे सौंपा है ऐसा भाव रखने से वह कर्मयोग हो जाता है। ध्येय का भाव रखकर जो कार्य करेंगे परमात्मा के लिए यह कार्य कर्मयोग बन जाता है इस प्रकार से जो भी कार्य कर रहा है वह कर्मयोगी है।

एक सफाईकर्मी स्वच्छता का कार्य कर रहा है। यदि उसके मन में यह विचार है कि परमात्मा ने ही यह कार्य करने के लिए मुझे चुना है। मेरा दायित्व परिसर को स्वच्छ रखना है। मेरी भारत माता को स्वच्छ रखने का दायित्व मुझे मिला है यदि इस भाव से कार्य होगा तो वह उच्च कोटि का हो जाएगा।

जो भी मेरा कार्य है वह परमात्मा का ही कार्य है।

भगवान कहते हैं कि इस बुद्धि की शरण में जाओ क्योंकि उसके साथ जोड़कर जो भी कार्य होगा वह श्रेष्ठ होगा। मैं यह कार्य इसलिए करूँगा तो मुझे यह मिलेगा, जो भी यह भाव रखता है वह अत्यन्त दीन है, कृपण है।

इसको एक उदाहरण से समझते हैं -
दो बच्चे हैं - एक जानता है पढ़ाई करना मेरा कर्त्तव्य है, माता-पिता की सेवा करना भी मेरा कर्तव्य है वह बालक होकर भी कर्मयोगी है। मैं यह कार्य इसलिए कर रहा हूँ कि यह मेरा कर्त्तव्य है, दायित्व है, पढ़ाई करना मेरा कर्त्तव्य है।
दूसरे बच्चे की पढ़ाई करने में रुचि नहीं दिख रही। माँ बच्चे को लालच देती है कि पढ़ाई कर लो तुझे आइसक्रीम या अमुक उपहार दूँगी। उसके बाद बच्चा पढ़ाई करता है। जो कार्य उपहार या आइसक्रीम के लिए हुआ वह श्रेष्ठ कार्य नहीं है। फल के लिए, आइसक्रीम के लिए वह कार्य कर रहा है। वह कृपण है, दीन है। वह लालच के लिए कुछ भी कर सकता है, बड़ा होकर देश भी बेच सकता है। यहाँ दोनों बच्चों में एक बच्चा पढ़ाई कर्त्तव्य के लिए कर रहा है और दूसरा बच्चा पढ़ाई आइसक्रीम या उपहार के लिए कार्य कर रहा है।

2.50

बुद्धियुक्तो जहातीह, उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः(ख्) कर्मसु कौशलम्॥2.50॥

बुद्धि-(समता) से युक्त (मनुष्य) यहाँ (जीवित अवस्था में ही) पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। अतः (तू) योग (समता) में लग जा (क्योंकि) कर्मों में योग (ही) कुशलता है।

विवेचन: यह पेचीदा श्लोक है। जब भगवान वेदव्यास जी ने महाभारत को लिखना आरम्भ किया तो गणेश जी से विनती की कि वे लेखन कार्य करें। गणेश जी ने यह शर्त रखी कि वे बिना रुके ही लिखेंगे। फिर व्यास जी ने भी अपनी शर्त बताते हुए कहा कहा कि ठीक है बिना समझे नहीं लिखना। भगवान वेदव्यास जी ने बीच-बीच में पेचीदा श्लोकों की रचना की जिससे गणेश जी को समझने में कुछ समय लग सके और वे नए श्लोकों की रचना कर सकें।

इस समत्व बुद्धि से युक्त होकर अपने ध्येय के लिए मुझे कार्य करना है और बीच-बीच में आने वाले लाभ-हानि, जय-पराजय, की चिन्ता नहीं करनी। इस लोक में जो इस प्रकार से कार्य करता है वह पुण्य कर्म और पाप कर्म दोनों से मुक्त हो जाता है। हम कार्य करते हैं तो कुछ-कुछ गलत हो जाता है और उसका दोष हो जाता है, जो अच्छा कार्य किया तो उसका पुण्य भी मिलता है। जो अपने ध्येय के साथ एकरूप होकर कार्य करता है उसे पाप और पुण्य का फल नहीं मिलता, वह दोनों से मुक्त हो जाता है। समत्व बुद्धि वाला व्यक्ति पाप नहीं होने देता पर पुण्य कर्मों का हिसाब नहीं रखता। मनुष्य पाप से तो मुक्त होना चाहता है लेकिन पुण्य कर्मों से मुक्त नहीं होना चाहता।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं -
हरी मुखे म्हणा हरी मुखे म्हणा।
पुण्याची गणना कोण करी।।

कर्मों का चिन्तन मत करो। कार्य करो और उन्हें भूलकर आगे बढ़ो। जो समत्व की बुद्धि से कार्य करता है वह पाप-पुण्य दोनों से मुक्त हो जाता है। इसीलिए भगवान कहते हैं **योगाय युजस्व** - योग में लगे रहो। मैं जो भी कार्य करूँगा वे सारे कर्त्तव्य कर्म मैं अपने परमात्मा के लिए, अपने ध्येय के लिए करूँगा। इस योग के साथ रहना है।

योग: कर्मसु कौशलं - कर्मों में कुशलता ही योग है। कुशलता पूर्वक किया हुआ प्रत्येक कार्य योग नहीं होता।
उदाहरण के लिए किसी जेबकतरे ने कुशलता से जेब काटी तो क्या यह योग हो गया। कुशलतापूर्वक किया गया हर कार्य योग नहीं है। कर्म बन्धन से कुशलतापूर्वक छूटना ही योग है। ध्येय के साथ कुशलतापूर्वक पाप- पुण्य के बन्धन से छूटना ही योग है।

कर्मसु योग: कौशलं - कर्म करते समय कर्म में योग होना चाहिए परमात्मा के लिए, ध्येय के लिए कर्म करना ही कुशलता है। कर्म तो कोई भी करता है परन्तु कर्मयोगी यह ध्यान रखता है कि मैं परमात्मा के लिए कर्म करता हूँ। वह कर्म में योग हो गया। ध्येय के साथ जोड़कर कर्म करना ही योग है। योग में स्थित होकर व्यायाम करना, योग करना, भोजन करना, नींद लेना भी ध्येय की प्राप्ति के लिए कर्म करना है। नींद की आवश्यकता है तो उतनी ही विश्रान्ति लूँ जिससे अपना कर्म अच्छे से कर सकूँ। भोजन करना है तो उतना ही करना है जिससे मेरे शरीर में शक्ति सञ्चय हो कि मैं अपने कार्य कर सकूँ। भोजन भी एक यज्ञ है। मेरे ध्येय की प्राप्ति के लिए मेरा शरीर ठीक रहे इसलिए भोजन आवश्यक है

मुखी घास घेता करावा विचार
कशासाठी हे अन्न मी सेविणार ।
घडो माझिया हातून देशसेवा ।

म्हणोनि मिळावी मला शक्ती देवा ॥

मैं भोजन इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे देश सेवा करने की शक्ति मिले। हर बात करते समय अपने ध्येय का स्मरण रहता है तो वह योग हो जाता है, यही कर्म के बन्धन से मुक्त करा देने वाला है।

2.51

कर्मजं(म्) बुद्धियुक्ता हि, फलं(न्) त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः(फ्), पदं(ङ्) गच्छन्त्यनामयम्॥2.51॥

कारण कि समतायुक्त बुद्धिमान साधक कर्मजन्य फल का अर्थात संसारमात्रका त्याग करके जन्मरूप बन्धन से मुक्त होकर निर्विकार पद को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन: भगवान कहते हैं कि इस योग की बुद्धि से कार्य करने वाले मनीषी लोग, ज्ञानी लोग जो कार्य करते हैं वह कर्म के फल को त्याग देते हैं। कर्म का फल अर्थात क्या मिला है, क्या मिलेगा? इसकी चिन्ता छोड़कर कर्तव्य कर्म करना है यह भाव रखकर कर्म करते रहो। इससे मुझे यश मिलना चाहिए या नहीं इसका चिन्तन नहीं करना। फल नहीं मिला यह न सोचकर और आगे कर्म करना है।

कर्त्तव्य करना है यह भाव रखकर कर्म करना है। यदि मेरे सामने कोई कर्म आता है तो पहले यह विचार करना है -
क्या मेरे लिए करने योग्य है?
क्या मेरा कर्त्तव्य है?

यदि इसका उत्तर हाँ में आता है तो अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार जो कर्म करता है वह जन्म बन्धन से, कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यह मरने के बाद मिलेगा वह मोक्ष नहीं है इस शरीर में रहते हुए सारी चिन्ताओं से मुक्त होना ही मोक्ष है।

यह काम करने का अवसर मुझे मिला है इस भाव से जो कर्म करता है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यह कर्म मुझे करना पड़ रहा है इस भाव के साथ वह बन्धन में बन्ध जाता है।

सारे संसार में विकार हैं। संसार में परिवर्तन होता रहता है। प्रकृति में कुछ भी स्थिर नहीं है। श्रीभगवान अविकारी हैं, अव्यय हैं, स्थिर हैं।

जो कर्मबन्धन से मुक्त होकर कर्म करता है वह अनामय पद को प्राप्त कर लेता है। अनामय अर्थात् विकार रहित हो जाता है। कर्म बन्धन से मुक्त होकर वे कर्मयोगी अनामय को प्राप्त कर सद् चित् आनन्द को प्राप्त कर लेते हैं।

2.52

यदा ते मोहकलिलं(म्), बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं(म्), श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥2.52॥

जिस समय तेरी बुद्धि मोहरूपी दलदल को भली भांति तर जायगी, उसी समय (तू) सुने हुए और सुनने में आने वाले (भोगों से) वैराग्य को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन: फल की इच्छा रखने से बुद्धि मोह के दलदल में फँस जाती है। कर्त्तव्य कर्म करने से बुद्धि मोह के दलदल के पार चली जाती है तो वह स्थिर हो जाती है। जब कर्त्तव्य भाव रखते हुए स्थिर बुद्धि से कर्म करते हैं तो आनन्द की प्राप्ति होती है। जब बुद्धि मोह के दलदल से बाहर निकल जाती है तो वैराग्य की प्राप्ति होती है।

वैराग्य का अर्थ वैरागी होना नहीं है। वैराग्य का अर्थ है वि+ राग। राग अर्थात् आसक्ति, चिपकना
सुख-दु:ख, जय-पराजय, लाभ-हानि में अटके रहना राग है। राग से चिपक कर न रहना, वैराग्य है।

विराग - जो मिला है उसे भूल कर आगे बढ़ना है। इस संसार में आनन्द के साथ रहना ही वैराग्य है, उसमें लिप्त नहीं होना। इससे मुक्ति वैराग्य है, निर्लिप्त हो जाना है, इस संसार में जो भी प्राप्त हुआ है उसके साथ आनन्द से रहना है।

2.53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते, यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धि:(स्), तदा योगमवाप्स्यसि॥2.53॥

जिस काल में शास्त्रीय मतभेदों से विचलित हुई तेरी बुद्धि निश्चल हो जायगी (और) परमात्मा में अचल (हो जायगी), उस काल में (तू) योग को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन: कर्म बन्धन में बँधने पर या सुनने पर यह कर्म करने से यह सुख मिलेगा, वह मिलेगा, हमारा मन विचलित हो जाता है, हमारी बुद्धि अस्थिर हो जाती है। चूँकि हमारी बुद्धि अचल नहीं रहती तो हम भटक जाते हैं।

अचला बुद्धि - बुद्धि कोई भी बात सुनकर विचलित नहीं होती निश्चल समाधि में रहती है। समाधि का अर्थ है परमात्मा। मेरा ध्येय, मेरा परमात्मा है या परमात्मा ही मेरा ध्येय है।

स्वातंत्र्य वीर सावरकर कहते थे-**स्वतन्त्रते भगवती**
मेरी भारत माता स्वतन्त्रता देवी के रूप में देखना ही मेरी भगवती है। वह ध्येय ही परमात्मा बन जाए।

परमात्मा में, ध्येय में बुद्धि को स्थिर करना ही योग की प्राप्ति है। जब बुद्धि और मन ध्येय का, परमात्मा का चिन्तन करेगा और वह अचल हो जाएगा तब योग की प्राप्ति हो जाती है। हम वहीं रहते हैं जहाँ हमारा मन है, हमारी बुद्धि वहीं रहती है। यदि हमारा मन और बुद्धि परमात्मा के चिन्तन में स्थित हो गई तब योग प्राप्ति हो जाएगी।

हमारा ध्यान लक्ष्य में स्थिर होगा तो लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है जब हमारा ध्यान लक्ष्य में स्थिर हो जाता है तो अन्य कामनाएँ विचलित नहीं करती, आकर्षित नहीं करती तब योग की प्राप्ति हो जाती है।

एक छात्र ने निश्चय कर लिया कि मुझे पढ़ाई करके इस वर्ष डॉक्टर बनना है। पढ़ाई करना मेरा कर्त्तव्य है। पढ़ाई करते समय यदि एक व्यक्ति कहते हैं कि चलो आज वर्ल्ड कप देखते हैं तो वह यह कहेगा कि वर्ल्ड कप मैं बाद में देखूँगा अभी मुझे पढ़ाई करनी है। वह बालक छोटा होने पर भी योगी हो गया, स्थितप्रज्ञ हो गया।

अपने ध्येय में, परमात्मा में, जिसकी शुद्ध बुद्धि स्थित हो गई वह स्थितप्रज्ञ हो गया।

2.54

अर्जुन उवाच
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः(ख्) किं(म्) प्रभाषेत, किमासीत व्रजेत किम्॥2.54॥

अर्जुन बोले - हे केशव ! परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्य के क्या लक्षण होते हैं? वह स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य कैसे बोलता है, कैसे बैठता है (और) कैसे चलता है अर्थात व्यवहार करता है?

विवेचन: अर्जुन के मन में प्रश्न आया कि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति कैसा होता है, क्या वह कभी विचलित नहीं होता?

वे भगवान से पूछते हैं कि कौन व्यक्ति स्थितप्रज्ञ कहलाएगा। उसकी व्याख्या क्या होगी? जो समाधिस्थ हो गया, जो परमात्मा के साथ एक रूप हो गया। ऐसा शुद्ध बुद्धि वाला व्यक्ति जो परमात्मा के साथ एक रूप हो गया वह क्या बोलता है, कैसे बैठता है, कैसे चलता है, कैसे व्यवहार करता है? उसकी बुद्धि और मन परमात्मा में लगा है तो उसका व्यवहार कैसा होता है?

2.55

श्रीभगवानुवाच
प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः(स्), स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥2.55॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! जिस काल में (साधक) मन में आयी सम्पूर्ण कामनाओं का भली भांति त्याग कर देता है (और) अपने आपसे अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है, उस काल में (वह) स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

विवेचन: अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए इस स्थितप्रज्ञ, श्रेष्ठ व्यक्ति का वर्णन करते हुए श्रीभगवान कहते हैं कि कामनाएँ अत्यन्त छोटी होती हैं। जब मनुष्य अपनी छोटी-छोटी कामनाओं को अच्छी तरह से छोड़ देता है और अपने बड़े ध्येय को पकड़ कर रखता है तब उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। जब तक ध्येय की प्राप्ति नहीं होती सुख मिले इसकी आवश्यकता नहीं, दु:ख मिला तो कोई चिन्ता नहीं।

स्वतन्त्रता देवी को प्राप्त करने के लिए वीर सावरकर जी को काला पानी के कारावास में जाना पड़ा था। वहाँ कोल्हू में बैल के स्थान पर उन्हें जोता जाता था। दिनभर कोल्हू में जुतना कितना कष्टप्रद होता होगा फिर भी उन्होंने सुन्दर काव्य लिखा उन्हें फर्क नहीं पड़ा। बस एक धुन थी कि मेरा ध्येय मुझे प्राप्त हो जाए।

मेरे परमात्मा मुझे प्राप्त हो गए मेरा ध्येय मुझे प्राप्त हो गया। अपना चित्त, अपना मन, अपनी बुद्धि परमात्मा में लगाकर जो सन्तुष्ट रहता है उसकी कामनाएँ स्वयं ही समाप्त हो जाती हैं। जो प्राप्त हो गया वह उससे सन्तुष्ट रहता है ऐसा व्यक्ति स्थितप्रज्ञ होता है।

2.56

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः(स्), सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः(स्), स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥2.56॥

दु:खों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता (और) सुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में स्पृहा नहीं होती (तथा) जो राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित हो गया है, (वह) मननशील मनुष्य स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

विवेचन: कितना भी बड़ा दु:ख आने पर स्थिरबुद्धि मनुष्य विचलित या उद्विग्न नहीं होता, दु:ख में डूबा हुआ नहीं रहता। सुख-दु:ख आते-जाते रहते हैं। जो स्थितप्रज्ञ है उसे सुख प्राप्ति की कामना नहीं होती। जो स्थितप्रज्ञ है वह दु:ख के आने पर उसमें डूबता नहीं, उसको सुख के प्रति भी कोई इच्छा नहीं होती। जो मिला उससे सन्तुष्ट हो जाता है। अपने लक्ष्य अपने ध्येय के लिए कर्मरत रहता है।

हम सभी जानते हैं कि स्वतन्त्रता सेनानी लोकमान्य तिलक जी का भारत की स्वतन्त्रता के लिए उनका बहुत बड़ा योगदान है। स्वतन्त्रता सङ्ग्राम के समय वे केसरी नामक पत्रिका को प्रकाशित करते थे। इस पत्रिका में वे प्रतिदिन सम्पादकीय लिखते थे, जिसमें लोक कल्याण और जन-जागरण की बातें प्रकाशित करते थे। वे प्रकाशित होने वाले लेखों की टिप्पणियाँ दिया करते थे।

एक दिन का प्रसङ्ग है। उनके टिप्पणी देने के समय कोई व्यक्ति आकर उनके कानों में कुछ कहता है। तिलक जी उनको रुकने के लिए कहते हैं और घर के भीतर चले जाते हैं। पाँच मिनट के उपरान्त वे लौटकर पुनः टिप्पणियाँ लिखवाने लगते हैं, आगे लिखने के लिए कहते हैं।
सूचना थी कि उनके युवा पुत्र की विमान दुर्घटना में मृत्यु हो जाती है। जो टिप्पणियाँ लिख रहे थे वे तिलक जी को कहते हैं कि दुर्घटना हुई है जो कार्य हम आज कर रहे हैं उसको कल कर देंगे। उनकी बात सुनकर लोकमान्य तिलक जी कहते हैं कि पुणे में ऐसी बहुत सारी दुर्घटनाएँ हो रही हैं, चिताएँ जल रही हैं, उसी में मेरे बेटे की भी एक चिता जलेगी। कल जो केसरी प्रकाशित होनी है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है उसका प्रकाशन होना आवश्यक है। दुःख की स्थिति है, अपने युवा बेटे को खोने का दुख भी है, लेकिन स्थित प्रज्ञा उनमें बहुत अधिक है। वह आज होने वाले कार्य को कल के लिए आगे नहीं धकेलना चाहते।

जो भय, क्रोध, आसक्ति से मुक्त है, समाप्त हो गये हैं, ऐसे स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति को मुनि कहते हैं।

2.57

यः(स्) सर्वत्रानभिस्नेहः(स्), तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.57॥

सब जगह आसक्ति रहित हुआ जो मनुष्य उस-उस शुभ-अशुभ को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होता है (और) न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

विवेचन: जो व्यक्ति समभाव रखता है। जिसकी दृष्टि सर्वत्र समान है लेकिन व्यवहार सम नहीं होता,अलग हो सकता है। समदृष्टि को हमने पाँचवें अध्याय में जाना है, समझा है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि|
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:||5.18||

ज्ञानी समदर्शी होते हैं, समान दृष्टि वाले होते हैं। कोई ज्ञानी ब्राह्मण है, कोई गाय है, कोई हाथी है और कोई कुत्ता है। इन सबके प्रति दृष्टि समान है, स्नेह हो सकता है पर व्यवहार भिन्न है। गाय के प्रति, हाथी के प्रति, कुत्ते के प्रति जो व्यवहार होता है वह वैसा ही रहेगा। दृष्टि समान रहेगी क्योंकि सभी भगवान की सृष्टि के रूप हैं। कोई मेरा कोई पराया ऐसा भाव नहीं है सभी के प्रति समान दृष्टि है।

कभी शुभ की प्राप्ति हुई कभी अशुभ की प्राप्ति, कभी सुख की तो कभी दुःख की, कभी अनुकूलता तो कभी प्रतिकूलता प्राप्त हुई। अनुकूलता पर आनन्दित नहीं होता और प्रतिकूलता पर विषण्ण नहीं होता। समदृष्टा अनुकूल परिस्थिति में अभिनन्दित नहीं होता और प्रतिकूलता में द्वेष नहीं करता। सुख प्राप्ति से अपार हर्ष होता है लेकिन उसी में डूबा नहीं रहता और जब दु:ख की प्राप्ति होती है उसका द्वेष भी नहीं करता है। उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है, सुख-दु:ख में विचलित नहीं होता। ऐसी स्थितियों में उस व्यक्ति की बुद्धि को स्थिर कहा जाता है।

प्रसिद्ध विज्ञानी आइन्स्टाइन को उनकी उपलब्धियों के कारण हम सभी जानते हैं। यदि किसी भी व्यक्ति को नोबेल प्राइज मिल जाता है तो उसे कितनी खुशी होती है, हम कितने उत्सुकता से भर जाते हैं। आइन्स्टाइन को नोबेल पुरस्कार मिलने के कुछ दिन पश्चात् एक फोन कॉल आता है कि नोबेल पुरस्कार के लिए प्राप्त पुरस्कार राशि के चैक को उन्होंने बैंक में क्यों जमा नहीं किया, आइन्स्टाइन सोचते हैं कि उस पुरस्कार राशि का चेक कहाँ रखा गया। स्थिर मन के व्यक्ति आइन्स्टाइन पुरस्कार राशि का चेक मिलने पर स्थिर रहते हैं। चेक मिलने पर प्रसन्न नहीं हुए और चेक जमा नहीं करने के लिये उद्विग्न नहीं हुए, ऐसे व्यक्ति स्थिर प्रवृत्ति में रहते हैं।

ऐसे व्यक्ति स्थिर मन से वर्तमान में जीते हैं वे बिल्कुल अस्थिर नहीं होते। सोचते हैं कि अभी आगे क्या होगा, क्या करना है। सुख में रमते नहीं दु:ख में डूबते नहीं। वे कभी उत्तेजित भी नहीं होते। ऐसा कहा गया है कि उनकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

2.58

यदा संहरते चायं(ङ्), कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य:(स्), तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥

जिस तरह कछुआ (अपने) अंगों को सब ओर से समेट लेता है, (ऐसे ही) जिस काल में यह (कर्मयोगी) इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को (सब प्रकार से हटा लेता) है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

विवेचन: सामान्य व्यक्ति विषयों के संपर्क में आने पर इन्द्रियों के अधीन हो जाता है। इन्द्रियों के सामने जैसे ही उनके विषय आ जाते हैं तो वे ललचा जाती हैं और हमें उन विषयों के पीछे खींच कर ले जाती हैं। विषय इन्द्रियों को, मन को ललचाते हैं और कर्म करने को बाध्य कर देते हैं।

स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लिए श्रीभगवान कछुए का उदाहरण देते हैं। कछुए पर जब कोई सङ्कट आता है तो वह अपने अङ्गों को अन्दर कर लेता है। ऐसे ही स्थितप्रज्ञ व्यक्ति भी अपने अङ्गों को अन्तर्मुखी करके विषयों से स्वयं को दूर कर लेता है, अपनी इन्द्रियों को अपने ध्येय पर स्थिर रखता है।

इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर लेता है, अपने आप को भीतर समेट लेता है कि उसे इन विषयों का चिन्तन नहीं करना, अपने अङ्गों को अन्तर्मुखी करके अपने ध्येय पर दृढ़ रहता है।

अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर नियन्त्रित करने की प्रक्रिया को अष्टाङ्ग योग में **प्रत्याहार** कहते हैं।

शरीर की प्रत्येक इन्द्रियों का आहार है।
आँखों का आहार है दृश्य
कानों का आहार है शब्द
त्वचा का आहार है स्पर्श
नाक का आहार है गन्ध
जीभ का आहार है रुचि।

ऐसा व्यक्ति स्थितप्रज्ञ कहलाता है जो स्वयं को रोकने का प्रयास करता है। इन्द्रियाँ जो चाहेंगी वह वैसा नहीं करेगा। स्थितप्रज्ञ व्रत से, आहार से स्वयं को नियन्त्रण में रखते हैं। वे जो चाहेंगे उनके लिए वह करेंगे।
लेकिन हमारा क्या होता है, सामान्य व्यक्ति का क्या होता है यह भगवान आगे बताते हैं।

2.59

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं(म्) रसोऽप्यस्य, परं(न्) दृष्ट्वा निवर्तते ॥2.59॥

निराहारी (इन्द्रियों को विषयों से हटाने वाले) मनुष्य के (भी) विषय तो निवृत्त हो जाते हैं (पर) रस निवृत्त नहीं होता। (परन्तु) परमात्म तत्त्व का अनुभव होने से इस स्थितप्रज्ञ मनुष्य का तो रस भी निवृत्त हो जाता है अर्थात उसकी संसार में रसबुद्धि नहीं रहती।

विवेचन: हम व्रत किस लिए रखते हैं? स्वयं पर नियन्त्रण रखने के लिए व्रत रखते हैं। आत्मसंयम सीखने के लिए व्रत रखे जाते हैं। किसी दिन निर्जला एकादशी व्रत करना है। व्रत के दिन पानी तक भी नहीं पीना है।
जिह्वा को नियन्त्रण में रखना सबसे महत्वपूर्ण है और सबसे कठिन भी है। जिह्वा को उसके विषय की याद भी नहीं आनी चाहिए। मौन व्रत रखते हैं और निर्जला एकादशी का व्रत भी रखते हैं।

एकादशी के दिन कौन-कौन से फल नहीं खाना है इसका व्रत रखते हैं। जब ऐसा व्रत है तो इन्द्रियों को उसका चिन्तन नहीं होना चाहिए। हम उन पदार्थों को दूर रखते हैं, उन्हें खाते नहीं। यह नियन्त्रण हम कर सकते हैं लेकिन क्या हमारा मन यह नियन्त्रण कर सकता है।

एकादशी व्रत के दिन समोसे से भरी प्लेट सामने लाते हैं तो कहते हैं आज नहीं खाऊँगा, उसकी ओर देखूँगा भी नहीं। कल देखना कितना सारा खाऊँगा, यह चिन्तन हम करते हैं। विषय से तो छुटकारा पा लेते हैं पर उसका चिन्तन करते हैं। निराहार रहकर भी विषयों का चिन्तन करते हैं।

एक कीर्तनकार अपनी टोली के साथ किसी स्थान पर कीर्तन करने पहुँचे। कीर्तन बहुत सुन्दर हुआ। दूसरे वर्ष भी कीर्तन करने के लिए उन्हें बुलाया गया। रास्ते में उन्होंने साथियों से पूछा कि क्या आपको याद है हम गत वर्ष भी यहाँ कीर्तन करने आए थे। तब उनमें से किसी ने कहा हाँ मुझे याद है रबड़ी बहुत अच्छी थी। कीर्तनकार बोले कि आपको कीर्तन नहीं याद किन्तु एक वर्ष बाद भी रबड़ी याद है।

सामान्य मनुष्य विषयों का चिन्तन करते हैं किन्तु स्थितप्रज्ञ विषयों का चिन्तन नहीं करता है। जिसको साक्षात्कार हुआ है, वह ज्ञानी है, स्थितप्रज्ञ हैं। परमात्मा के साथ वह इतना जुड़ा रहता है कि उसे विषयों की याद भी नहीं आती।

एक बार एक साधु और उनके शिष्य एक मञ्च से जा रहे थे। शाम का समय था, सूर्य ढलने लगा था। वे एक नदी के पास पहुँचते हैं। नदी के किनारे एक तरुण युवती खड़ी दिखाई देती है। वह शिष्यों से निवेदन करती है कि नदी में प्रवाह तीव्र है कृपया हाथ पकड़ कर उसे नदी पार कराने के लिए कहती है। उन शिष्यों में से एक शिष्य कहता है कि नहीं मैं तो साधु हूँ मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकता। वह युवती निराश हो कहती है कि घर में उसका एक छोटा बालक है वे उसे नदी पार करा दें अन्यथा अनर्थ हो जाएगा। गुरुजी नदी के पास आ गए। समस्या सुनकर गुरु जी ने युवती का हाथ पकड़कर उसे नदी के पार करा दिया।

दूसरे दिन एक शिष्य ने गुरुजी से पूछा कि गुरुजी आपने ही हमे संन्यास के बारे में सिखाया है। युवती का हाथ नहीं पकड़ना। लेकिन आप स्वयं ही उसका हाथ पकड़कर नदी के पार ले गये। गुरु जी कहते हैं मैं तो उसका हाथ पकड़कर उसे नदी किनारे छोड़ आया लेकिन तुम अभी भी उसका हाथ पकड़े हो, अर्थात् तुम अभी भी उसका चिन्तन कर रहे हो।

विषयों का चिन्तन नहीं होना चाहिए। विषयों का चिन्तन मन में करते रहने से वह उससे कभी मुक्त नहीं होता। जो चिन्तन से मुक्त हो जाता है वह वास्तव में मुक्त हो जाता है।

प्रश्नोत्तर:-

प्रश्नकर्ता:- एच के गुप्ता भैया

प्रश्न:- बुद्धि-योग एवं भक्ति-योग एक ही हैं या भिन्न है?

उत्तर:- ये सभी योग अन्ततोगत्वा एक हो जाते हैं, कर्म योग-परमात्मा की प्राप्ति के अपने ध्येय के लिये कार्य करते रहना। कर्मयोग करते-करते स्वत: ही हमें परमात्मा का ध्यान होने लगता है, वह ध्यान योग हो जाता है। वहाँ पर हमारी बुद्धि स्थिर हो जाती है, जब हमारे ध्यान में यह रहता है कि मैं उसके लिये कार्य कर रहा हूँ, तो अपने आप ही परमात्मा के प्रति प्रेम जागृत हो जाता है वह भक्ति योग कहलाता है।

प्रश्नकर्ता:- हनुमान भैया

प्रश्न:- अध्याय 2 के तैंतालीसवें (43) श्लोक का अर्थ क्या है? कृपया बताइये।

उत्तर:- **कामात्मानः स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम्। क्रियाविशेषबहुला भोगैश्वर्यगति प्रति।।**

यह श्लोक बयालीसवें एवं चौवालीसवें श्लोक के बिना पूर्ण नहीं है। हे अर्जुन जो भोगों में ही लीन है, जो कर्म करने के बाद फल की आकांक्षाओं में ही डूबे हुए हैं। इनकी बुद्धि में स्वर्ग प्राप्ति ही सर्व श्रेष्ठ है। ऐसे अज्ञानी जन्म कर्म फल की प्राप्ति में ही लगे रहते है, इनका मन भोग ऐश्वर्य में ही लगा हुआ है। इहलोक में कैसे सुख प्राप्त किया जाय यह वेदों में बताया हुआ है। लेकिन उसी सुख में डूबे रहने का निषेध है। भोगों का निरन्तर चिन्तन करने से हमारी बुद्धि हमारे ध्येय-परमात्मा में नहीं स्थिर होती है। वह कामनाओं की प्राप्ति में ही लगा रहता है। अन्य प्राणी पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े भी तो भोजन आदि उद्देश्य के लिये जीते हैं, किन्तु मनुष्य उनसे भिन्न है क्योंकि वह विवेकशील प्राणी है, वह अपने लक्ष्य-परमात्मा की प्राप्ति कर जीवन मरण के चक्र से मुक्ति पा सकता है।

आहार निद्रा भय मैथुनं च।

समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषः।

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

मनुष्य जन्म पाकर भी यदि मनुष्य अपने ध्येय परमात्मा की प्राप्ति में प्रयासरत नहीं है तो पशु और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है।

प्रश्नकर्ता:- विजय सोम भैया

प्रश्न:- मेरी माताजी वृद्धाश्रम में हैं, मेरी पत्नी उनको घर लाना नहीं चाहती। उनको घर ले आने का क्या उपाय है?

उत्तर:- पत्नी को समझाया जाय कि माता-पिता की सेवा करना सर्वोच्च धर्म है। उनको भगवद्गीता पढ़ने के लिये प्रवृत्त कीजिये, वह अपने आप माता जी को घर लेकर आ जायेगी।

प्रश्नकर्ता:- पुष्पलता दीदी

प्रश्न:- अध्याय 2 के पैंतालीसवें श्लोक में योग क्षेम का क्या तात्पर्य है?

उत्तर:- जो अप्राप्त है उसे प्राप्त करना योग है, प्राप्त की रक्षा करना क्षेम है। नवें अध्याय में एक श्लोक है-

योगक्षेमम् वहाम्यहम्।

जो अनन्य भाव से भगवान की शरण में आता है, उसके योग क्षेम को मैं स्वयम् वहन करता हूँ, जिस व्यक्ति के मन में सदैव परमात्मा का ही चिन्तन हो, वही भक्त है, उसका योगक्षेम परमात्मा स्वयम् वहन करते हैं।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||